(196) (क) पश्चिम के आदर्श लोकतंत्र तथा हमारे आयातित लोकतंत्र के वीच का फर्क । साथ ही लोक स्वराज्य और लोक तंत्र का भी अंतर
(ख) रूचिका राठौर प्रकरण पर लिखे गये लेख पर प्रश्न उठाया गया उसका उत्तर।
(ग) केन्द्रीय बजट पर मेरी परिकल्पना
(घ) साम्यवादियो द्वारा खाडी देशो की वकालत पर उनसे धनलेने का संदेह

लोकतंत्र ने लोकतंत्र का गला घोंट दिया

पूरी दुनिया में लोकतंत्र दो प्रकार के है (1) मौलिक (2) आयातित । पश्चिम के देशो में लोकतंत्र का मौलिक स्वरूप आया जबकि दक्षिण एशिया के देशों में आयातित । यद्यपि पूरी दुनिया में कही भी लोकतंत्र का आदर्श स्वरूप तो नहीं बन पाया किन्तु पश्चिम का लोकतंत्र कामचलाउ स्थिति में तो माना ही जा सकता है जबकि आयातित लोकतंत्र के नाम धोखा दिखता है। भारत भी उन्हीं देशों में शामिल है जहॉ लोकतंत्र मौलिक न होकर आयातित है क्योकि भारत में भी लोकतंत्र तंत्र द्वारा लोक पर शासन करने का एक औजार से अधिक आगे नही बढ़ पाया ।

स्वतंत्रता के पूर्व जब लोकतंत्र भारत में नही था तब भारत के आम नागरिक किसी व्यवस्था के प्रति निष्ठा न रखकर व्यक्ति के प्रति रखते रहे है। राजा के प्रति सम्मान भाव था राज्य व्यवस्था के प्रति नही । क्योकि व्यवस्था से राजा न बनकर राजा की व्यवस्था होती थी स्वतंत्रता के बाद भी उक्त व्यक्ति निष्ठा प्रणाली में कोई बदलाव नहीं आया । साठ वर्ष बीतने के बाद भी पुराने राजाओं या उनके परिवारों के प्रति निष्ठा में कोई कमी नही आ सकी । नेहरू जी के बाद इन्दिरा जी, उनके बाद राजीव जी और उनके बाद राहुल जी स्थापित होते रहे। अन्य कोई सामने आया नहीं या आने नही दिया गया यह भिन्न विषय है किन्तु भारत में लोकतंत्र होने के बाद भी एक परिवार ही आगे आता गया यह पूरी तरह सच्चाई है।

लोकतंत्र की यह विशेषता होती है कि वहॉ सर्वोच्च सत्ता का अनुशासन होता है शासन नहीं । आश्चर्य है कि भारत में शासन और अनुशासन का अन्तर ही लोग नही समझते । लोग तो बेचारे दोनो का अन्तर क्या समझेंगे जब बड़े बड़े नेता ही यह अन्तर नही समझते। राजीव गांधी ने दल बदल विधेयक प्रस्तुत करके खूब वाहवाही लूटी थी दल बदल विधयेक भारतीय लोकतंत्र के लिये एक कलंक है क्योकि हमारे निर्वाचित जन प्रतिनिधि सिर्फ रबर स्टांप मात्र बन जाते है। सत्ता के केन्द्रीयकरण का सर्वाधिक निर्लज्ज प्रयास दल बदल विधयेक था किन्तु आम जनता ने उसका इस तरह स्वागत किया जैसे कि वह उसे समाधान समझ रही है । अनुशासन का अभाव अनुशासन की दिशा में बढ़ना चाहिये था किन्तु वह शासन की दिशा में बढ़ गया था । प्रश्न नेहरू परिवार तक ही सीमित नहीं हैं। भारत का प्रत्येक राजनैतिक दल लगातार केन्द्रीयकरण की दिशा में बढ़ रहा है और इसे ही लोकतंत्र मानता है जबकि यह लोकतंत्र के

पूरी तरह विपरीत है क्योंकि भारत का लोकतंत्र शासन से अनुशासन को सशक्त करना चाहता है जो सबसे आसान तरीका है किन्तु है अलोकतांत्रिक ।

लोकतंत्र की दूसरी विशेषता यह होती है कि वहॉ न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका का बैमबा ंदक इंसंदबम ैलेजमउ हो । भारत में इन तीनो के बीच में छीना झपटी का वातावरण है । विधायिका तो शुरू से ही संसद सर्वोच्च का नारा देती रही । संसद सर्वोच्च पर संवैधानिक अंकुश लगाने मे विफल न्यायपालिका ने न्यायालय सर्वोच्च का ऐसा नारा दिया कि भारत की संपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था ही चौपट हो गई । न्यायपालिका न्याय की सर्वोच्च पहरेदार तो है किन्तु न्याय भी तो व्यवस्था से ही देना है। यदि व्यवस्था ही कमजोर हो गई तो न्यायालय न्याय को परिभाषित मात्र ही कर सकता है किन्तु न्याय दे नही सकता । अभी रूचिका और राठौर प्रकरण में न्यायालय ने प्रशासनिक आदेश जारी कर दिया कि प्रत्येक रिपोर्ट थाने में एफ.आई.आर. के रूप मे लिखी जाय । कल्पना करिये कि इस आदेश के द्वारा झूठी रिपोर्ट की बाढ़ आ जाती है तो इसका दोषी कौन होगा ? राठौर ने पद का दुरूपयोग किया और रिपोर्ट नही लिखने दी यह गलत था और उस गलत का राठौर को दण्ड दे सकते है किन्तु पूरी प्रक्रिया को ही उलटने का प्रयास न्यायापालिका का अनुचित हस्तक्षेप है। जनहित में भी न्यायालय यदि सीधा कदम उठाता है तो व्यवस्था कमजोर होगी और कही न कही लोकतंत्र की विश्वसनीयता घटेगी ।

भारत में लोकतंत्र की जड़े कमजोर हो रही है यह अनेक उदाहरणों से स्पष्ट हो सकता है । अब तो वोट देने के अधिकार को छोड़कर अन्य कही भी लोकतंत्र के दर्शन ही दुर्लभ है। किन्तु विचारणीय यह है कि ऐसा हुआ क्यों ? गांधी हत्या के बाद सामान्य लोग तो गांधी के अतिरिक्त कुछ और समझते नहीं थे । जो गांधी ने कहा वही उनके लिये तो लोकतंत्र था । गांधी के बाद चार पांच प्रकार के लोग आगे आये । उन सब में साम्यवाद सबसे अधिक प्रभावी था । साम्यवाद पूरी दुनिया में आज तक सर्वाधिक खतरनाक विचार धारा मानी जाती है। इनका लोकतंत्र से पूरा पूरा छत्तीस का संबंध है। ये तानाशाही विचारों के पोषक है, सर्वाधिक चालाक है। लोकतंत्र को अच्छी तरह समझते है। लोकतंत्र को किस तरह परास्त किया जा सकता है यह भी खूब जानते है। प्रारंभ से ही ये भारत में अपनी योजना में सफल रहे । लोकतंत्र को लोकतांत्रिक तरीके से असफल करने में सर्वाधिक भूमिका साम्यवाद की रही है। दूसरा गुट था संघ परिवार का । इसकी नीयत बिल्कुल ठीक थी किन्तु इन्होंने लोकतंत्र को कभी समझा ही नहीं । साम्यवाद की सधी हुई योजनाबद्ध चालों के समक्ष ये कभी टिक ही नहीं पाये । अर्थनीति का तो इन्हें कभी ज्ञान रहा ही नही किन्तु अन्य मामलों में भी इनके पास लाठी के अलावा कभी कुछ नही रहा अन्यथा जिस तरह भारत के आम लोगों ने संघ परिवार की मदद की है और वह पूरी की पूरी व्यवस्था में बदलाव के लिये पर्याप्त था किन्तु जिस तरह साम्यवादी समय समय पर अपनी नीतियों की समीक्षा करते रहते है उस तरह आज तक इन्होंने समीक्षा नहीं की। ये तो केवल अपने कार्यक्रमों की ही समीक्षा करते रह गये। तीसरा ग्रुप था समाजवादियों का । ये लोग लोकतंत्र को समझते भी थे और नीयत भी ठीक थी किन्तु संघर्ष में अकेले पड़ गये। साम्यवादी चालाक थे, संघ परिवार नासमझ था, नेहरू अम्बेड़कर आदि चालाक तो थे ही किन्तु गांधी का नाम और सत्ता का ढांचा उनके पास था । इसलिये नेहरू अम्बेड़कर के ग्रुप ने कुछ समाजवादियों को तोड़ लिया और कुछ को छोड़ दिया । भारत में एक चौथा ग्रुप था

मुसलमानों का जो न कभी लोकतंत्र को समझे न ही उन्हें समझने की जरूरत थी । भारत के अधिकांश मुसलमान भी तो समझदारी में संघ परिवार के भाई बन्द ही रहे । भारत में अपना धार्मिक संगठन मजबूत करना है, अपनी संख्या बढ़ाना है चाहे लोकतंत्र रहे या अन्य तंत्र इससे अधिक इनको मतलब नहीं । संघ परिवार की अपेक्षा इस्लामिक परिवार के पास और भी कम समझदारी थी किन्तु इन्हें यह अतिरिक्त सुविधा प्राप्त थी कि विश्व इस्लामिक मूवमेंट इन्हें सहायता भी देता रहता था और मार्ग दर्शन भी । इसलिये ये लगातार बढ़ते रहे अन्यथा ये अपनी साम्प्रदायिकता बढ़ाने में सफल नही हो पाते ।

परिणाम हुआ कि भारत में लोकतंत्र का नाम मजबूत होता चला गया और लोकतंत्र लगातार कमजोर होता रहा । आज तो भारत की स्थिति यह है कि यदि कोई तानाशाह पूरी सत्ता अपने हाथ में लेकर उसे लोकतंत्र कह दे तो या तो भारतीय उसे ही लोकंतत्र कह देंगे या पश्चिम की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करेंगे कि नयी स्थिति को पश्चिम लोकतंत्र कहता है या लोकतंत्र विरोधी । लोकतंत्र की मूल अवधारणा को तो लोग समझते ही नहीं और यदि कुछ लोग समझते भी है तो या तो उनकी नीयत खराब है या वे निराश है ।

ऐसी विकट स्थिति में विचारणीय प्रश्न है कि मार्ग क्या है ? लोकतंत्र की लोकतंत्र विरोधी मान्यताएॅ ही भारत में लोकतंत्र मान ली गई है। दो वर्ष पूर्व तो अन्तिम रूप से लगने लगा था कि अब लोकतंत्र का किला ढहने वाला है किन्तु प्रकाश करात जी के लड़कपन ने मनमोहन सिंह जी को वह अवसर दे दिया कि वे लोकतत्र को ढ़हने से बचाने का एक और प्रयास करें । अब तक तो मनमोहन सिंह जी के सधे हुए कदम लोकतंत्र के पटरी पर आने का संकेत दे रहे हैं। लोकसभा चुनावों के बाद दो तीन लक्षण स्पष्ट दिखे है। पहला तो यह है कि बात बात में अमेरिका को दोष देने की प्रवृति कम हुई है। एक समय तो ऐसा आया था कि अमेरिका को अनावश्यक भी गाली देने का एक फैशन बन गया था । अब ऐसे लोग धीरे धीरे कमजोर हो रहे है। आप अभी पाकिस्तान भारत संयुक्त वार्ता को ही देखिये । चारों तरफ से वार्ता विरोध मात्र यह कहकर हुआ कि वार्ता अमेरिका के दबाव में हो रही है। कम्युनिस्टों की तो इस संबंध चर्चा ही व्यर्थ है क्योकि उनकी डिक्सनरी में तो कोई दूसरा शब्द ही नहीं है किन्तु संघ परिवार ने भी वार्ता का विरोध किया । वे कभी समझ ही नही पाये कि उनकी विरोध की प्राथमिकता इस्लामिक कट्टरवाद है या पाकिस्तान । स्पष्ट दिखता है कि भारत को इस्लामिक आतंकवाद अस्थिर कर रहा है न कि पाकिस्तान । जिस देश की संभावित प्रधानमंत्री की कट्टरवादियों ने इसलिये हत्या कर दी हो कि वह भारत से तालमेल चाहती है उस देश की सरकार सहानुभति की पात्र है विरोध की नहीं । किन्तु इतनी महीन बात न ये समझ सकते है न समझना चाहते है। ये तो बस इतना ही जानते है कि चाहे पाकिस्तान हो या इस्लाम। हमारा तो सिर्फ विरोध करना ही काम । यदि लगे हाथ दो चार खरी खोटी अमेरिका भी सुन ले तो इन्हें और संतोष मिल जाता है। ऐसी स्थिति में भी मनमोहन सिंह जी ने वार्ता शुरू करके ठीक लाइन पकड़ी है।

मनमोहन सिंह जी ने मंहगाई के मुद्दे पर भी नई राह पकड़ी है। सच्चाई यह है कि जब जब भाजपा सत्ता में आती है तब तब वस्तुओं के मूल्य बहुत कम हो जाते है । सन् सतहत्तर में शक्कर सस्ती होते होते ढ़ाई रूपया प्रति किलो तक और सरसों तेल पांच रूपया

लीटर हो गया था । किसानों की कमर टूट गई । खेती बन्द होने लगी भाजपा को खूब वाहवाही मिली किन्तु उत्पादन घटता चला गया । मनमोहन सिंह ने चौतरफा आलोचनाओं की परवाह न करते हुये वस्तुओं को मंहगा होने दिया । मैं जानता हूँ कि जितना विरोध मंहगाई के नाम पर मनमोहन सिंह झेल रहे है वह अभूतपूर्व है किन्तु वे डिगे नहीं और मंहगाई को बरदान मानकर आगे बढ़ते जा रहे हैं।

इसी तरह मनमोहन सिंह जी ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करने के कदम उठाये हैं। ग्राम सभाओं को अधिकार देने का प्रयत्न जारी है ही। उनका यह प्रयत्न भी लोकतंत्र को सशक्त करेगा ।

किन्तु मनमोहन सिंह जी एक बात आज तक नही समझे कि भारत की सभी आर्थिक समस्याओं का समाधान कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्य वृद्धि ही है। या तो वे समझ नही पाये या हिम्मत नहीं कर पाये । कारण चाहे जो भी हो किन्तु यह काम कठिन नहीं था । यदि एक समझदारी से काम लिया जाता और कृत्रिम उर्जा के मूल्यों में बीस प्रतिशत वृद्धि करके संपूर्ण राशि गरीबी रेखा से नीचे वालों को दें दी जाती तो सरकार को बहुत समर्थन मिलता। कृत्रिम उर्जा की कुल खपत पर बीस प्रतिशत की मूल्य वृद्धि से करीब पन्द्रह खरब रूपया इकट्ठा होगा । यदि पचीस करोड़ आबादी में बांटे तो प्रति व्यक्ति छः हजार रूपया प्रति वर्ष होगा । बीस प्रतिशत कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि और छः हजार रूपया प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष में जनता किसे पसंद करेगी यह आप स्वयं सोचिये । जनता सरकारी बजट के लिये कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि के खिलाफ है किन्तु उसे नगद मिले तो तुरन्त सहमत हो जायेगी ।

मैं सहमत हूँ कि भारत में व्यवस्था कुछ सुधर तो सकती है किन्तु आदर्श लोकतंत्र संभव नहीं । लोकतंत्र के नाम पर समाज को परोसी जा रही गुलामी राजनेताओं की नीयत का खोट है। यदि मनमोहन सिंह जी ज्यादा प्रयत्न करेंगे तो विद्रोह का भी खतरा है। इसलिये लोकतंत्र के शुद्धिकरण की प्रतीक्षा ठीक नहीं । यही सोचकर हम लोगों ने आदर्श लोकतंत्र को लोकतंत्र न कहकर लोक स्वराज्य नाम देना शुरू किया । वास्तव में लोक स्वराज्य आदर्श लोकतंत्र का बदला हुआ नाम है किन्तु लोकतंत्र शब्द जितना बदनाम हो गया है उस स्थिति में उसे छोड़ना ठीक लगा। साम्यवादी, संघ परिवार, इस्लामिक रूढ़िवादी तो लोक स्वराज्य को समझेंगे नहीं किन्तु समाजवादी, गांधीवादी, कांग्रेस भी जिनकी नीयत ठीक है वे समझ सकते है। यही सोचकर लोकतंत्र के शुद्धिकरण के लिये लोक स्वराज्य की अवधारणा विकसित की जा रही है।

प्रश्नोत्तर

(1)प्रश्नः— आपने ज्ञान तत्व में तिल का ताड़ शीर्षक से राठौर रूचिका प्रकरण को आधार बनाकर राठौर का समर्थन किया । यदि तिल का ताड़ बन भी गया तो आपको कष्ट क्यों ? राठौर का चरित्र संदेहास्पद था ऐसा आप भी मानते है। उसने पुलिसिया अत्याचार किये यह भी आप मानते हैं फिर सफाई आपके ओर से क्यो ? इस तरह तो आप अनेक मामलों को तिल का ताड़ कह देंगे । मैं विस्तृत समीक्षा जानना चाहता हूँ ।

उत्तरः— यह बात गलत है कि मैने राठौर का समर्थन किया । सच्चाई यह है कि मैंने व्यवस्था का समर्थन किया । यदि न्यायालय राठौर को आजीवन करावास की सजा देता तब भी मैं व्यवस्था का समर्थन करता ।

सीधा सा सिद्धान्त है कि व्यक्ति पर कानून का, कानून पर सरकार का, सरकार पर संसद का, संसद पर व्यवस्था का, व्यवस्था पर संविधान का, और संविधान पर समाज का अंकुश होता है। यह क्रम टूटना उचित नहीं । व्यक्ति को सीधा न्याय या दण्ड देने का प्रयास अव्यवस्था को बढ़ाता है जो अन्ततोगत्वा अन्याय ही होता है। न्याय और व्यवस्था बिल्कुल अलग अलग होते हुये भी एक गाड़ी के दो पहिये है। गाड़ी पर समाज बैठा है। यदि न्याय की अधिक कोशिश होगी तो व्यवस्था कमजोर होती जायेगी ।

एक और सिद्धान्त है कि अपराध और दण्ड के बीच संतुलन होना चाहिये । यदि अपराध की अपेक्षा दण्ड अधिक कठोर होगा तो दण्ड मिलना ही कठिन हो जायेगा । राठौर का अपराध जिस तरह का है वह यदि फांसी देने योग्य है तो राठौर ने रूचिका की मांग के लिये पुलिसिया अत्याचार किया होता तब आप क्या सजा देते ? यदि राठौर ने बलात्कार किया होता तब क्या सजा होती ? राठौर ने रूचिका के साथ छेड़ छाड़ की । रूचिका राठौर को एक थप्पड़ मार देती । मामला पूरा हो जाता । राठौर को दण्ड मिल जाता । रूचिका ने सामाजिक दण्ड न देकर कानून का सहारा लिया । कानून ने अपना काम किया । अब बीच में समाज कहां से आ गया । क्या आप सहमत है कि न्यायालय के स्थान पर टी. वी. वालों को निर्णय का अधिकार दे दिया जाये । यदि टी. वी. वाले बिक गये तब क्या होगा ? कही न कही आपको अन्त करना ही होगा आप और टी. वी. वाले मिलकर बताइये कि कानून में क्या बदलाव किये जावे जिससे ऐसी घटनाएँ न हो । जब तक भ्रष्टाचार नही रूकता तब तक समाधान संभव नही । किन्तु भ्रष्टाचार रूके कैसे । यदि भ्रष्टाचार करने वालों को फांसी दे दें तो भ्रष्टाचार का निर्णय कम्प्यूटर तो करेगा नहीं । निर्णय करेगा व्यक्ति और वह है भ्रष्ट । इसलिये गंभीरता पूर्वक सोचिये । न्याय और व्यवस्था के बीच संतुलन बनाइये । न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध अपील करिये । मीडिया ट्रायल भी अच्छी परंपरा नही है। इससे स्थापित व्यवस्था की शक्ति घटती है और एक नई शक्ति का न्यूशेंस वैल्यू बढ़ता है । मैं इस बात के पहले भी खिलाफ था और आज भी खिलाफ हूँ कि लोकतंत्र को भीड़तंत्र में बदला जाये । मैं चाहता हूँ कि लोकतंत्र को लोकतांत्रिक तरीके से लोक स्वराज्य में बदला जाये ।

2) प्रश्नः— कल्पना करिये कि रूचिका राठौर प्रकरण में मीडिया ने तिल का ताड़ बना ही दिया तो क्या एक उदाहरण को वर्तमान सामाजिक ट्रेन्ड मान लिया जावे ।

उत्तरः— तिल का ताड़ बनाने का यह अकेला प्रकरण नहीं है। वी.टी. बैगन मामले को देखिये । किसान बीटी बैगन बीज लगाये या भारतीय पारंपरिक बीज, इसके निर्णय का अन्तिम अधिकार किसका हो ? किसान का, ग्राम सभा का, सरकार का, किसी स्वतंत्र इकाई का, पर्यावरण विदो या किसी और का । मेरे विचार में सामान्य स्थिति में यह अन्तिम अधिकार किसान का होना चाहिये । यदि बहुत ही विशेष स्थिति सिद्ध हो जावे तभी सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिये । पर्यावरण वादी तो दाल भात में मूसलचंद बनकर बेमतलब उछल कूद करते रहते है। भारतीय उद्योगपति ऐसे पर्यावरण वादियों की आर्थिक सहायता करते रहते है तथा मीडिया इसे तिल का ताड़ बना देता है। किसान की स्वतंत्रता का तो विचार ही गौण हो गया । सरकार को प्रारंभिक

जांच के बाद पूरा निर्णय किसान पर छोड़कर उसे स्वतंत्रता दे देनी थी किन्तु सरकार ने वैज्ञानिक जांच बिठा दी । जांच पूरी हो गई तो वैज्ञानिक बिक गये का हल्ला हुआ । मंत्रालय ने जांच कर ली तो मंत्रालय बिका का हल्ला हुआ । जयराम रमेश जी कूद पड़े । इन्होंने जन जांच शुरू कर दी । जयराम जी ने किसी किसान से यह नहीं पूछा कि बीज खरीदने के निर्णय की स्वतंत्रता आपकी हो या सरकार की । पर्यावरण वादियों से चर्चा कर ली और निर्णय कर दिया । पर्यावरण वादियों को न बैगन की खेती करना है न बीज खरीदना है । इनकी खेती तो केवल इनका बोर्ड है जिस पर नोटो की खेती होती है। प्रश्न उठता है कि किसान नासमझ है, सरकार विदेशों से प्रभावित है, वैज्ञानिक और मंत्री बिक गये यह बात यदि सच भी हो जावे तो जयराम रमेश और पर्यावरण वादी न बिके हों इसकी क्या गारंटी है ? जिस तरह इन लोगों ने सक्रियता दिखाई उसके पीछे कोई निःस्वार्थ भाव ही रहा हो ऐसा तो कोई रिकार्ड इनका नही रहा है। बीज खरीद कर खेती करने वाले किसान की स्वतंत्रता छीनने का घिनौना काम इन्होने किया और मीडिया ने तिल का ताड़ बना दिया ।

इसी तरह आपको एक और उदाहरण बतावें । हमारे देश में राष्ट्रकुल खेलो का आयोजन हो रहा है । कुछ लोग समर्थक भी है और कुछ विरोधी भी । मैं इस संबंध में ज्यादा नहीं जानता किन्तु दोनों की बातें सुन अवश्य लेता हूँ । आयोजन के विरोधी ग्रुप के अनिल सदगोपाल जी प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री हैं । ये वही सदगोपाल जी है जो निःशुल्क शिक्षा समान शिक्षा के प्रख्यात समर्थक हैं। इनका बस चले तो ये शिक्षा पर ही अधिकांश बजट खर्च कर दें । इन बेचारे को इस बात से कोई मतलब नहीं कि बजट के लिये रोटी, कपड़ा, दवा जैसी प्राथमिक आवश्यक वस्तुओं पर भी कर लगाना पड़ता है तब कही जाकर शिक्षा आदि पर खर्च होता है। ऐसे ऐसे शिक्षा शास्त्री की सोच तो ऐसी है जैसे ''बूढ़ा मरे या जवान, हत्या से ही काम'' अर्थात् चाहे मजदूर पर टैक्स लगे या किसान पर इससे इनका कोई मतलब नहीं । इनका तो बस शिक्षा के लिये नयी नयी मांगे पेश करना ही काम है। ज्ञान तत्व एक सौ अस्सी में इन्हीं सदगोपाल जी की मैने काफी चर्चा भी की है।

श्री सदगोपाल जी ने श्री सुनिल जी लिखित राष्ट्रमंडल खेल संबंधी पुस्तक का विमोचन किया । विमोचन का विवरण प्रसिद्ध साप्ताहिक निर्दलीय भोपाल के संपादक कैलाश आदमी जी ने अपने सम्पादकीय में लिखा भी है। श्री सदगोपाल जी ने राष्ट्र मंडल खेलों पर भारत सरकार का खर्च डेढ़ लाख करोड़ बताया है और पुस्तक के लेखक श्री सुनिल जी ने बताया डेढ़ लाख हजार करोड़ । मैने जब बजट में खेलों पर होने वाले खर्च से तुलना की तो समझ ही नहीं पाया कि बजट सही या सदगोपाल जी । सुनिल जी की तो चर्चा ही व्यर्थ है क्योकि उनका लेखन तो बिना तिल का ही ताड़ बन गया लगता है। विचारणीय प्रश्न यह है कि सच को सच बताने की अपेक्षा उसे घुमा फिराकर बढ़ाना क्या परंपरा है। मैं खेलों पर होने वाले खर्च के पक्ष विपक्ष में भी नहीं न ही मैं कैलाश आदमी जी की हां में हां मिला रहा हूँ किन्तु इस बात के लिये तो आदमी जी प्रशंसा करनी ही चाहिये कि उन्होंने यर्थाथ को उसी रूप में रखा ।

इसी तरह मैं एक दिन बाबा रामदेव जी के राजनैतिक सहयोगी राजीव दीक्षित जी का भाषण रामदेव जी की सभा से सुन रहा था । दीक्षित जी ने ऐतिहासिक घटना बताते हुए कहा कि अंग्रेजों ने भारत को किस तरह लूटा । दीक्षित जी के अनुसार अग्रेजों के एक अफसर राबर्ट क्लाइव ने कलकत्ते में एक दिन की लूट का सोना पानी की जहाजों में लदवाया जो नब्बे जल जहाज हुआ । उन्होंने जहाज की लम्बाई चौड़ाई भी बताई। ऐसी बाते जब जिम्मेदार लोगों

के मुंह से निकलती है तो मुझे तिल का ताड़ शब्द याद आ जाता है। मैंने यह मानकर संतोष किया कि या तो सोना नहीं होगा या मेरे सुनने में भूल हुई या मेरी जानकारी अधूरी है या वक्ता के बोलने में भूल हुई । किन्तु जब मैंने यह चर्चा अपने कुछ साथियों से की तो पता चला कि राजीव दीक्षित जी तो बात को बतंगड़ बनाने के लिये विश्व विख्यात हैं। इसलिये यथार्थ खोजने की आवश्यकता ही नहीं ।

इसी तरह मेरे एक मित्र ने एक दिन बताया कि भारत में अछूत मुस्लिम शासन काल में बनें । मुसलमानों ने जब बड़ी मात्रा में गुलाम बनाये तब उनमें से उन्होंने कुछ को साफ सफाई का काम दे दिया । ऐसी ही लोगों एक जाति बन गई जो हरिजन हो गये । उनसे मैंने कुछ और जानना चाहा तो उन्होंने कहां कि उन्होंने यह बात अपने संगठन के प्रमुख लोगों से सुनी है और मैं भी उसे उपयोगी समझकर दूसरों को बताता हूँ । मैने उनसे यथार्थ पूछा तो बोले कि यथार्थ है या नहीं यह तो ट्रेनर जाने किन्तु उपयोगी है इतना मैं जानता हूँ । मैने उन्हें अवर्ण और अछूत के बिषय में कुछ बताया तो वे बोले कि यह बात सच भी हो तो हमारे उपयोग की नहीं । क्योकि यह बात मुसलमानों के विरूद्ध फिट नही हो रही ।

कुछ ऐसी ही बात यह रूचिका राठौर प्रकरण की भी है। मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि वासना में व्यक्ति की सोचने समझने की शक्ति समाप्त होकर शारीरिक भूख हावी हो जाती है। ऐसे समय में धर्म, जाति, परिवार, उम्र, न्याय अन्याय, गरीब अमीर, लोक लाज, सामाजिक पारिवारिक, नियम आदि की सीमाएँ टूट जाती है। एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ब्रिटेन की महारानी भारत आई थी तो वे आगरा के एक खानसामा अब्दुल करीम के प्रति कुछ ऐसी प्रभावित हुई कि उसे साथ ले गई । महारानी के प्रासाद में गुलाम अब्दुल करीम का सम्मान देखकर बड़े बड़े लोग जलते थे । गुलाम भारत के गुलाम नौजवान पण्डित नेहरू के भारत के शासक अंग्रेज गवर्नर की पत्नी से भी संबंधो की चर्चा होती ही रहती है। एक क्रान्तिकारी किशन लाल अग्रवाल तो अब तक जीवित हैं जो छतीसगढ़ के पेन्ड्रा में रहते है। वे क्रान्तिकारी थे और बचने के लिये उन्होंने एक अंग्रेज बड़े अधिकारी की नौकरी कर ली । उस अधिकारी की पत्नी इस नौजवान से प्रभावित हो गई । ये किशन लाल जी दिन भर उस अधिकारी का काम करते और कभी कभी रात को गुप्त रूप से विद्रोही गतिविधि में सक्रिय हो जाते । दो बार पकड़े जाने पर भी उस औरत ने छुड़वा दिया और तीसरी बार इनसे निवेदन किया कि वे अब चले जावें तो अच्छा है। मेरा लिखने का आशय यह है कि वासना की आग सीमाएँ नहीं देखती । इसलिये ऐसे मामलों में दण्ड भी देश काल परिस्थिति के ही आधार पर होता आया है।

दण्ड में भी कई क्रम होते हैं जिस तरह अपराध में क्रम होते है। महिला पुरूष संबंध संबंधी अपराध के क्रम में (1) प्रस्ताव (2) पुनरोक्ति (3) दबाव (4) अपहरण (5) बलात्कार आदि होते है। इसी तरह बढ़ते बढ़ते सजा भी सात या दस वर्ष कारावास तक जाती है । रूचिका राठौर मामले में राठौर ने प्रस्ताव किया और विरोध होने पर अस्वीकार कर दिया या मंशा बदल दी । रूचिका ने विरोध सार्वजनिक किया और विरोध के लिये कई तरह के दबाव बनाये । राठौर ने भी अपने बचाव में पद का दुरूपयोग किया । मूल मामला प्रस्ताव का था जो प्रस्ताव से आगे नहीं बढ़ा । बाकी सारी घटनाएँ आक्रमण प्रत्याक्रमण से संबंधित हैं। विचार करिये कि क्या प्रस्ताव मात्र का दण्ड बलात्कार के बराबर दे दें । समानता की बात करने वाले ऐसे ही एक और केश को याद करें जब छत्तीसगढ़ के उस समय के मुख्यमंत्री अजीत जोगी ने रामऔतार जग्गी के समक्ष प्रस्ताव किया जिसे जग्गी ने अमान्य कर दिया । जग्गी की हत्या हो

गई । हत्या में पुलिस विभाग भी शामिल हुआ । अपराधियों को प्रशासन की मदद से सुरक्षित बचाकर उनकी जगह दूसरे लोगों को जेल में डाला गया और अपराध स्वीकार कराया गया । इन सबके बाद भी जोगी जी का लड़का अमित निर्दोष छूट गया और अब फिर घूम घूम कर कांग्रेस पार्टी की नेतागिरी कर रहा है। कहॉ है मीडिया और समानता । रूचिका राठौर मामलें में प्रस्ताव पर छः माह की सजा और सजा के बाद हंगामा । दूसरी ओर जोगी प्रकरण में हत्या के बाद भी रिहाई और न्यायालय में अपील । कहॉ है मीडिया की समानता । रूचिका एक उभरती हुई कलाकार थी तो जग्गी बेचारा उभरता हुआ राजनेता नहीं था क्या ? समानता की बात करने वालों का ढोंग नहीं तो और क्या है।

मैने अपने उत्तर में जो कुछ लिखा है, यह मानकर लिखा है कि राठौर ने छेड़छाड़ की जबकि अब तक राठौर की नीयत प्रमाणित नहीं है कि वह वासना भरी थी या वात्सल्य भरी । यदि उसकी नीयत वात्सल्य भरी होगी जैसा कि कुछ लोग कहते भी है तो उसके साथ पूरा पूरा अन्याय हुआ । यदि उसकी नीयत वासना भरी थी तो यह प्रकरण छः माह दण्ड के बाद समाप्त हो जाना चाहिये था । यदि प्रकरण बढ़ाना भी था तो न्यायालय में अपील का मार्ग पर्याप्त था । किन्तु जिस प्रकार का नाटक किया गया, मीडिया ट्रायल किया गया, समाज की भावनाएॅ उभारी गई वह बिल्कुल गलत था और ऐसे प्रयत्नों की निन्दा करनी चाहिये।

(3)प्रश्नः– केन्द्रीय बजट के संबंध में आपके विचार बिल्कुल लीक से हटकर है । यह बताइये कि हमारे अन्य नेता ऐसा सोचते ही नही या सोचना नही चाहते । यदि प्रणव मुखर्जी की जगह आप होते तो कैसा बजट प्रस्तुत करते ?

उत्तरः– यह बात सच है कि मेरी पूरी पूरी सोच ही लीक से हटकर हैं। मै ''गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, किसान,'' इन चार को केन्द्र में रखकर सोचता हूॅ जबकि प्रणव दादा सहित सब लोग इन चारों के अतिरिक्त लोगों का ही ध्यान रखते हैं और इन चार के विषय में तो सोचते ही नहीं । प्रणव दादा ने डीजल पेट्रोल की जो मूल्य वृद्धि की है वह गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, किसान को न देखकर मजबूरी में की है क्योकि प्रणव दादा को गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, किसान की लंगोटी छीनने में शर्म आई जबकि आडवाणी, प्रकाश करात, मुलायम, लालू, ममता आदि बिक्री कर, प्रवेश कर, वनोपज कर आदि लगाकर उस लंगोटी का भी हिस्सा काट लेते है। फिर भी प्रणव दादा ने मजबूरी में यह कदम उठाया, सोच समझकर नहीं । मेरे बजट में विकास का आकलन सकल घरेलू उत्पाद न होकर न्यूनतम श्रम मूल्य होता । भारत के औसत व्यक्ति का जीवन स्तर कितना उॅचा हुआ यह पैमाना ही गलत है। सही यह है कि भारत में न्यूनतम श्रम मूल्य कितना बढ़ा । यह श्रम मूल्य वृद्धि भी मूल रूपया में होनी चाहिये, चलायमान रूपया के आधार पर नहीं । इसका अर्थ यह हुआ कि एक वर्ष पूर्व के रूपये की कीमत को आधार मानकर श्रम मूल्य का आकलन करना होगा ।

मेरा दूसरा आकलन होगा कि एक वर्ष में हम विदेशी कर्ज, पर्यावरण प्रदूषण, सरकार पर निर्भरता, शहरी आबादी आदि पर कितने प्रतिशत कमी कर पाये । इसी के साथ साथ मेरा यह भी आकलन होगा कि हम समाज में कितने प्रतिशत ज्ञान विस्तार कर पाये । ज्ञान और शिक्षा बिल्कुल भिन्न होती है। ज्ञान बढ़ेगा तो अन्धविश्वास घटेगा, चरित्र बढ़ेगा । शिक्षा के साथ दोनों का जुड़ाव आवश्यक नहीं ।

मेरे प्रस्तावित बजट में इतनी धाराएँ नही होती न ही इतना लम्बा होता । यदि मैं प्रणव दादा के लिये बजट लिखता तो बजट में सभी प्रकार के वेतन भत्ते वस्तुओं के क्रय विक्रय मूल्य आदि पर सात दशमलव दो प्रतिशत मूल्य वृद्धि घोषित कर देता जिसका मतलब था मुद्रा स्फीति के आधार पर वृद्धि । सभी विभागों के दान अनुदान सब इस लाइन में शामिल होते । कोई अन्य खास बात होती तो अलग से घटा बढ़ा देता ।

यदि मैं कांग्रेस पार्टी का वित्त मंत्री होता तो मैं अन्य सबको यथावत् रखकर साथ में कृत्रिम उर्जा पर बीस प्रतिशत की मूल्य वृद्धि करके उससे प्राप्त धन गरीबी रेखा के नीचे वालों को प्रतिमाह बराबर बराबर प्रति व्यक्ति के आधार पर बांट देता। मेरे आकलन के अनुसार यह धन गरीबी रेखा से नीचे की पचीस प्रतिशत आबादी को छः हजार रूपया प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष देने में समर्थ होता । अर्थात् पांच व्यक्ति के परिवार को तीस हजार रूपया इसका मतलब होता कि अपने आप बहुत सी आर्थिक समस्याएँ हट जाती ।

यदि मैं लोक स्वराज्य की ओर से वित्त मंत्री होता तो पांच विभागों का खर्च अपने पास रखकर अन्य सभी विभाग एक स्वायत्त शासी निगम के रूप में कर देता । यह निगम स्वतंत्र आर्थिक निकाय होता । सेना, पुलिस, वित्त, विदेश एवं न्याय ही अपने पास रखता ।

मैं होता तो क्या करता यह भिन्न विषय है किन्तु वर्तमान खींचतान में वित्तमंत्री ने साहस का काम किया है। बिहार के जदयू सांसद एन. के. सिंह जी ने व्यक्तिगत चर्चा में स्वीकार किया कि आर्थिक दृष्टि से डीजल पेट्रोल की मूल्य वृद्धि एक उचित कदम है यद्यपि इसके राजनैतिक दुष्परिणाम कांग्रेस पार्टी को झेलने होंगे । स्पष्ट है कि एन. के. सिंह जी भी राजनैतिक आधार पर सरकार के विरूद्ध प्रचार में शामिल हैं। आप सोचिये कि राजनेताओं का विरोध कितना उचित है ? मुझे लगता है कि हमारे राजनेताओं के पास इसके अतिरिक्त विरोध का कोई मुद्दा है ही नही तो बेचारे क्या करें ? मेरे विचार में अधिकांश राजनीतिज्ञ सब कुछ समझते है किन्तु वामपंथी अपने खाड़ी देश प्रेम के कारण तथा अन्य सत्ता संघर्ष के उदेश्य से ऐसा करते है।

(4)प्रश्नः– आपने कई बार लिखा है कि वामपंथी खाड़ी देशों की वकालत में डीजल पेट्रोल मूल्य वृद्धि का विरोध करते है। ऐसा कहने का आधार क्या है ? सर्वोदयी भी तो ऐसा करते है पर उनकी आलोचना नहीं करते ।

उत्तर :– वामपंथी का संपूर्ण कार्यक्रम स्वयं ही इसका प्रमाण है। वामपंथी अकेले ऐसे जीव है जो डीजल पेट्रोल मूल्य वृद्धि का सैद्धान्तिक विरोध करते है और किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। दूसरा कोई दल ऐसा नही। दूसरी बात यह है कि वामपंथी पूरी ताकत लगाकर बिजली उत्पादन बढ़ाने का भी विरोध करते है चाहे वह बिजली उत्पादन अमेरिका के सहयोग से हो या भारत में ही बड़े बांध बनाकर । आप एक भी ऐसा उदाहरण नही बता सकते जिसमें वामपंथियों ने बिजली उत्पादन के राष्ट्रीय प्रयास का विरोध न किया हो । तीसरा अनुमान यह है कि वामपंथियों के पास खर्च करने का सारा धन न तो सिर्फ केरल से इकट्ठा हो सकता है न ही उद्योगपति इन्हें देते है। भ्रष्टाचार में इनका या इनकी सरकारों का वैसा खराब रेकार्ड नहीं । चीन और रूस भी बड़ी सहायता देने की स्थिति में नहीं । खर्च इनका अन्य दलों से अन्य दलो से अधिक ही होता है । इन सब आधारो पर मुझे विश्वास है कि वामपंथियो को खाडी के देशो से सब प्रकार की सहायता मिलती है जिसके बदले में ये डीजल पेट्रोल की भारत में खपत बढ़ाने की वकालत करते रहते है।

जहॉ तक सर्वोदय का संबंध है तो इनकी नीयत खराब नहीं है। वामपंथ डवजपअंजमत है और सर्वोदय डवजपअंजमक । सर्वोदय में वामपंथी है कम किन्तु प्रभाव उन्हीं का है। वामपंथी जैसा चाहते हैं वैसा ही सर्वोदय करता है। लेकिन इनकी न नीयत खराब है न ही इनमें भ्रष्टाचार है। ये तो वामपंथियों की सोच को राष्ट्रहित समाजहित मानकर उसी तरह काम करते रहते हैं । बन्दर दोषी नहीं होता, मदारी होता है। आपको याद होगा कि मनमोहन सिंह सरकार के विरूद्ध वामपंथ ने निर्णायक लड़ाई छेड़ी तब सारी लड़ाई संसद तक रही । सड़क पर नहीं आई। वामपंथी भी जोड़ तोड़ तक सीमित रहे । सर्वोदय पूरे भारत में अकेला ऐसा संगठन है जिसमें परमाणु उर्जा संधि का सड़को पर उतर कर विरोध प्रकट किया और जब वामपंथ परास्त हो गया तब सर्वोदय ने भी आन्दोलन बन्द कर दिया ।

ऐसी स्थिति में मैं सर्वोदय की आलोचना नहीं करता ।